Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-3* *Issue-5* *May 2026***

www.researchvidyapith.com **ISSN (Online): 3048-7331**

बौद्ध ग्रंथों में पर्यावरणीय संदेश

कु0 ममता

शोधार्थी, प्राचीन इतिहास विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

Article Info: *(Recieved- 15/03/2026, Accept- 12/04/2026, Published- 10/05/2026)*

DOI- 10.70650/rvimj.2026v3i50011

सारांश–

प्रस्तुत शोध पत्र "बौद्ध ग्रंथों में पर्यावरणीय संदेश"में पर्यावरण की भौतिक एवं जैविक संकल्पना के संदर्भ में बौद्ध साहित्य में निहित प्रकृतिदृकेन्द्रित दृष्टिकोण का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। पर्यावरण को अजीवित (मृदा, जल, वायु आदि) तथा जीवित (वनस्पति, पशु, मानव एवं सूक्ष्मजीव) तत्त्वों के समन्वित तंत्र के रूप में स्वीकार किया गया है, जो जीवन की निरंतरता एवं संतुलन के लिए अनिवार्य है। बौद्ध ग्रंथों में जीवन और पर्यावरण को परस्पर आश्रित एवं पूरक माना गया है, जहाँ जीवों का अस्तित्व प्रकृति के संरक्षण एवं सामंजस्य पर आधारित है।बौद्ध धर्म का उद्भव एवं विकास प्राकृतिक परिवेश में ही हुआ, जिसका स्पष्ट उल्लेख त्रिपिटक एवं अन्य बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। बुद्ध का ज्ञानार्जन बोधिवृक्ष के नीचे होना, वन एवं उपवनों में विहार, तथा सारनाथ के हिरण्यवन में धर्मचक्र प्रवर्तन ये सभी प्रसंग बौद्ध ग्रंथों में प्रकृति की महत्ता को रेखांकित करते हैं। बोधिवृक्ष, वन, नदी एवं पर्वत जैसे प्राकृतिक प्रतीकों का बौद्ध साहित्य में निरंतर उल्लेख यह दर्शाता है कि प्रकृति केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना और नैतिक जीवन का आधार है।शोध पत्र में यह प्रतिपादित किया गया है कि बौद्ध ग्रंथों में वर्णित करुणा, अहिंसा, अपरिग्रह और मध्यम मार्ग की अवधारणाएँ पर्यावरण संरक्षण की मूल भावना से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हैं। प्रकृति के प्रति अज्ञानता एवं लोभ से उत्पन्न असंतुलन को बौद्ध ग्रंथ दुःख का कारण मानते हैं। इस प्रकार बौद्ध साहित्य न केवल मानव जीवन के नैतिक उत्थान की दिशा में मार्गदर्शन करता है, बल्कि समकालीन पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु भी एक सशक्त एवं प्रासंगिक दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

मुख्य शब्द– पर्यावरणीय ,प्रकृति और मानव,करुणा, अहिंसा, मध्यम मार्ग, बोधिवृक्ष,त्रिपिटक, प्रकृति संरक्षण

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य बौद्ध ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय संदेशों के दार्शनिक एवं नैतिक पक्ष का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन के माध्यम से त्रिपिटक तथा अन्य बौद्ध साहित्य में वर्णित प्रकृति, वन, वृक्ष, जल और जीव–जगत से संबंधित अवधारणाओं की विवेचना करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि बौद्ध दर्शन में पर्यावरण को केवल भौतिक संसाधन न मानकर करुणा, अहिंसा और सह अस्तित्व पर आधारित जीवन दृष्टि का अभिन्न अंग माना गया है। करुणा, अपरिग्रह तथा मध्यम मार्ग जैसी बौद्ध अवधारणाओं को पर्यावरणीय संरक्षण के संदर्भ में विश्लेषित करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि तृष्णा, अज्ञानता और अति–उपभोग ही प्राकृतिक असंतुलन और मानवीय दुःख के प्रमुख कारण हैं। शोध का उद्देश्य समकालीन पर्यावरणीय संकटों के परिप्रेक्ष्य में बौद्ध ग्रंथों की प्रासंगिकता को रेखांकित करना तथा मानव प्रकृति के संतुलित, नैतिक और उत्तरदायित्वपूर्ण संबंध की पुनर्स्थापना हेतु बौद्ध दृष्टिकोण को एक वैचारिक आधार के रूप में प्रस्तुत करना है।

प्रस्तुत शोध पत्र विशुद्ध, गुणात्मक तथा ग्रंथाधारित अध्ययन पर आधारित है, जिसमें ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति का समन्वित प्रयोग किया गया है। शोध को प्रामाणिक बनाने हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का विधिवत् उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत त्रिपिटक (विनय

पिटक, सुत्त पिटक एवं अभिधम्म पिटक), धम्मपद, जातक कथाएँ तथा अन्य प्रामाणिक बौद्ध ग्रंथों का पाठीय एवं सैद्धान्तिक अध्ययन किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के रूप में बौद्ध अध्ययन, दर्शन एवं पर्यावरण विषयक प्रतिष्ठित शोध–पत्रिकाओं एवं संदर्भ ग्रंथों का उपयोग किया गया है। बौद्ध ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय अवधारणाओं की सम्यक् व्याख्या हेतु तुलनात्मक, व्याख्यात्मक एवं आलोचनात्मक पद्धति को अपनाया गया है तथा निष्कर्षों की स्थापना तर्कसंगत एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के आधार पर की गई है।

पर्यावरण एक व्यापक भौतिक एवं जैविक संकल्पना है, जिसमें पृथ्वी के अजीवित (मृदा, जल, वायु) तथा जीवित (वनस्पति, पशु, मानव) तत्त्वों का पारस्परिक संबंध सम्मिलित है। टान्सले के अनुसार, जीव जिन प्रभावकारी परिस्थितियों में निवास करते हैं, उनका समष्टि रूप ही पर्यावरण है।छठी शताब्दी ईसा पूर्व में उद्भूत बौद्ध धर्म का विकास प्रकृति के सान्निध्य में हुआ। बुद्ध का जीवन बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति से लेकर धर्मचक्र प्रवर्तन और महापरिनिर्वाण तक वन एवं प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जुड़ा रहा। बौद्ध दर्शन प्राकृतिक असंतुलन को अज्ञान और तृष्णा का परिणाम मानता है तथा करुणा, अहिंसा और संयम को पर्यावरण संरक्षण का आधार स्वीकार करता है।अतः बौद्ध ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय दृष्टि न केवल आध्यात्मिक साधना का मार्ग है, बल्कि सतत् विकास और मानव प्रकृति संतुलन की सशक्त वैचारिक आधारशिला भी है। आज जिस पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर समस्त विश्व बल दे रहा है, उसका संकेत लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध के जीवन में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। उनकी पर्यावरण संवेदनशील दृष्टि वर्तमान वैश्विक संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। क्षत्रिय कुल में जन्म लेने के बावजूद उनका जन्म राजमहल में नहीं, बल्कि लुम्बिनी वन में शाल वृक्ष की छाया में हुआ, जो उनके जीवन और प्रकृति के गहरे संबंध को दर्शाता है।सिद्धार्थ का संपूर्ण जीवन जन्म से महापरिनिर्वाण तक प्राकृतिक परिवेश से अभिन्न रूप से जुड़ा रहा। राजमहल की अपेक्षा उन्हें वन, उपवन और खुले स्थल अधिक प्रिय थे। बाल्यावस्था में जामुन वृक्ष के नीचे उनका ध्यानमग्न होना इस तथ्य का प्रमाण है कि प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण सहज और स्वाभाविक था, जिसने आगे चलकर उनके जीवन दर्शन को गहराई से प्रभावित किया।

बोधगया, साँची, मथुरा तथा अमरावती आदि स्थलों से प्राप्त शुंगकालीन कला उदाहरणों में वृक्षों एवं प्राकृतिक तत्त्वों का अत्यंत सजीव और कलात्मक अंकन मिलता है। विशेष रूप से साँची के तोरणों पर उत्कीर्ण वृक्ष–अलंकरण न केवल सौंदर्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, बल्कि तत्कालीन समाज की प्रकृति केन्द्रित चेतना को भी अभिव्यक्त करते हैं, जहाँ अशोक, शाल, चम्पा और पलाश जैसे वृक्षों का यथार्थपरक एवं भावपूर्ण चित्रण प्राप्त होता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार प्राकृतिक असंतुलन ही प्राकृतिक आपदाओं का मूल कारण है और यह असंतुलन मानव की अज्ञानता से उत्पन्न होता है। वही प्रकृति, जो संतुलित अवस्था में मानव और समस्त जीवधारियों के लिए सुख–समृद्धि का आधार है, मानव द्वारा किए गए क्षरण और दुरुपयोग के परिणामस्वरूप विनाश का कारण बन जाती है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के प्रति यह संवेदनशील दृष्टि प्राचीनकाल से विद्यमान रही है, जिसमें जैन एवं बौद्ध काल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बौद्ध साहित्य में अहिंसा के सिद्धान्त को व्यावहारिक संतुलन के साथ प्रस्तुत किया गया, जिससे कृषि के विकास को प्रोत्साहन मिला। जहाँ जैन धर्म में कृषि के दौरान जीव हत्या की संभावना के कारण कृषकों को पर्याप्त प्रेरणा नहीं मिल सकी, वहीं महात्मा बुद्ध ने कृषि कार्य को सामाजिक जीवन का आवश्यक अंग मानते हुए पशुओं की भूमिका को स्वीकार किया। बौद्धकाल में खेतों का सीमांकन कर वनभूमि को कृषि योग्य बनाया जाता था, किंतु उपयोगी वृक्षों को क्षति पहुँचाने से बचा जाता था जिसका संकेत बौद्ध साहित्य में उपलब्ध उक्त दृष्टान्त से मिलता है। सव्वं वनं छिन्दित्वा खेत्राणि कारित्वा कसिकम्मं करन्सु।[1] यह सब बौद्ध धर्म में निहित पर्यावरणीय चेतना को स्पष्ट करता है। महात्मा बुद्ध का द्वादश निदान सिद्धान्त इस बात को रेखांकित करता है कि समस्त दुःखों का मूल अज्ञान है और पर्यावरणीय संतुलन को नष्ट करना मानव की सबसे बड़ी अज्ञानता है। बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्यकृदुःख, दुःख–समुदय, दुःख–निरोध तथा दुःख–निरोधगामिनी प्रतिपदा यदि पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में देखे जाएँ, तो स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय संकट भी मानवीय तृष्णा और अज्ञान से उत्पन्न दुःख है, जिसका समाधान संयम, संतुलन और नैतिक आचरण के माध्यम से ही संभव है।

आज जिस बोधगया को भगवान् बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति की पावन भूमि के रूप में विश्व जानता है, बुद्धकाल में उसका स्वरूप इससे सर्वथा भिन्न था। उस समय यह क्षेत्र प्रकृति की अनुपम छटा से समृद्ध था, जहाँ निरंजना नदी के तटों को चारों ओर फैले सघन वन अलंकृत करते थे। महाभिनिष्क्रमण के उपरान्त बोधिसत्व ने अपनी

छह वर्षों की कठोर तपस्या इसी नदी के किनारे, वनाच्छादित और स्वच्छ प्राकृतिक परिवेश में संपन्न की। इस दीर्घ तपःकाल में उनके जीवन धारण का आधार केवल शुद्ध एवं संतुलित वातावरण ही था। गिरि कंदराओं, वृक्षों की शीतल छाया, प्रवाहित नदी एवं झरनों के समीप विस्तृत प्राकृतिक वातावरण में उन्होंने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि की साधना की।[2] अंततः वैशाख पूर्णिमा की पुण्य रात्रि में एक पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें दुःख–मुक्ति का मार्ग प्राप्त हुआ, जो आगे चलकर 'बोधिवृक्ष' अथवा 'बोधिद्रुम' के नाम से विख्यात हुआ। इस वृक्ष के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए भगवान् बुद्ध ने एक सप्ताह तक निरंतर उसी वृक्ष की ओर अनिमिष दृष्टि से ध्यानस्थ होकर विमुक्ति–सुख का अनुभव किया, जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त होता हैकृ

"अथ खो भगवा बोधिरुक्ख मूले सन्नाहं
एकपल्लंकेन निसीद, विमुक्ति सुखं।"[3]

बोधि प्राप्ति के उपरान्त भगवान् बुद्ध ने प्रथम सप्ताह बोधिवृक्ष के नीचे ही व्यतीत किया।[4] द्वितीय सप्ताह में वे बोधिवृक्ष के समीप पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्थान पर अनिमेष दृष्टि से उसी की ओर देखते हुए ध्यानस्थ रहे।[5] वर्तमान में इसी स्थल पर ईंटों से निर्मित लगभग 55 फुट ऊँचा 'अनिमेष लोचन' नामक चौत्य अवस्थित है।[6] तृतीय सप्ताह भगवान् बुद्ध ने चक्रमण करते हुए बिताया। आज महाबोधि मंदिर की उत्तर दिशा की दीवार से सटा हुआ लगभग 60 फुट लम्बा एवं 3 फुट ऊँचा चबूतरा उनकी 'चंक्रमण भूमि' के रूप में मान्य है।[7] इस चबूतरे पर कमल पुष्प के प्रतीक रूप में भगवान् बुद्ध के विमल निर्मल चरण अंकित हैं।[8] चतुर्थ सप्ताह भगवान् बुद्ध ने उस स्थान पर व्यतीत किया जहाँ वर्तमान में 'रत्नधर'नामक चौत्य स्थापित है।[9] पंचम सप्ताह उन्होंने 'अजपाल' नामक वटवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न होकर बिताया।सप्तम सप्ताह भगवान् बुद्ध ने 'राजयतन' नामक वृक्ष के नीचे ध्यान साधना में व्यतीत किया। इसके अतिरिक्त उरूवेला के समीप निरंजना नदी के तट पर स्थित सुप्रतिष्ठित तीर्थ नामक घाट का भी विशेष महत्त्व है, जहाँ भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्त्व–प्राप्ति से पूर्व स्नान किया था।बोधिवृक्ष के नीचे जिस बुद्धत्त्व (ज्ञान) का साक्षात्कार भगवान् बुद्ध को हुआ, उसी का उपदेश उन्होंने सर्वप्रथम सारनाथ स्थित इसिपतन मृगदाय में पंचवर्गीय भिक्खुओं को प्रदान किया। यह उपदेश एक आम के वृक्ष के नीचे दिया गया था। यह स्थल अंजनवन मृगदाय के नाम से प्रसिद्ध था, जो अपनी सघन, काजल–सी काली छायादार वनस्पति के कारण 'अंजनवन' कहलाता था। इस वन में मृग स्वच्छन्द रूप से विचरण करते थे, इसी कारण यह क्षेत्र 'मृगदाय' के नाम से जाना गया। सारनाथ के समीप स्थित दूसरा वन 'कंटकीवन' था, जिसे अट्ठकथाओं में 'गहकरमण्ड वन' भी कहा गया है। इस वन में भगवान् बुद्ध ने सारिपुत्र, महाभोग्गल्लान तथा अनुरुद्ध के साथ निवास किया था।

भगवान् बुद्ध तथा उनके पंचवर्गीय भिक्खु विशाल भिक्खुसंघ के साथ वर्ष में वर्षावास के तीन महीनों को छोड़कर शेष समय वनों, जंगलों एवं कंदराओं में विहार करते रहे।[10] भगवान् बुद्ध ने अपने पैंतालिस वर्षावास जिन–जिन स्थलों पर व्यतीत किए, वे सभी स्थान पुष्पाच्छादित वृक्षों, घने वनों, शीतल एवं शुद्ध वायु तथा स्वच्छ जलधाराओं से युक्त प्राकृतिक परिवेश में स्थित थे। उन्होंने 80 वर्ष की अवस्था तक निरन्तर धर्म प्रचारार्थ विहार करते हुए अपना जीवन व्यतीत किया।'महापरिनिब्बान सुत्त' के अनुसार, परिनिर्वाण से पूर्व भगवान् बुद्ध वैशाली के समीप वेलुव ग्राम में विहार करते हुए अत्यधिक अस्वस्थ हो गए थे। इसी अवस्था में उन्होंने कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया। वस्तुतः यह उनकी अन्तिम इच्छा थी कि वे प्रकृति की गोद में, शुद्ध एवं शांत वातावरण के बीच चिरनिद्रा को प्राप्त हों।कुशीनगर के दक्षिण पश्चिम दिशा में स्थित मल्लों का 'उपवतन' नामक शालवन, जो हिरण्यवती नदी के दूसरे तट पर अवस्थित था, उनके अन्तिम निवास का स्थल बना।[11] इसी उपवतन शालवन में युगल शाल वृक्षों के नीचे भगवान् बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया।[12] भगवान् बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन मानव समाज की समस्याओं के निराकरण हेतु मुक्ति के मार्ग के उद्घाटन के साथ–साथ प्रकृति एवं वन्य जीवन से गहरे रूप में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। उन्होंने वनों एवं वन्य जीवन से सम्बद्ध मिथ्या धारणाओं का खण्डन करते हुए उनके संरक्षण को अपने जीवन–आचरण का अनिवार्य अंग बनाया। इस प्रकार तथागत के जीवन के विविध प्रसंग वृक्षों एवं प्राकृतिक परिवेश से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध हैं लुम्बिनीवन में शाल वृक्षों की शीतल छाया में सिद्धार्थ गौतम का जन्म,बोधगया में पीपल (बोधिवृक्ष) के नीचे ज्ञान–प्राप्ति,कुश घास पर बैठकर ध्यान–साधना एवं विपश्यना जैसी नवीन जीवन दृष्टि का विकास,[13] सारनाथ में आम के वृक्ष के नीचे भिक्खुसंघ को प्रथम उपदेश (धम्मचक्र प्रवर्तन),[14] बरगद, बाँस, ढाक आदि वृक्षों से युक्त घने वनों में भिक्खुसंघ को उपदेश,[15] तथा कुशीनगर में दो शाल वृक्षों की छाया में महापरिनिर्वाण ये सभी प्रसंग प्रकृति के साथ उनके अविच्छिन्न सम्बन्ध को स्पष्ट

करते हैं।[16] तथागत के पश्चात् भिक्खुओं ने इस जीवन दृष्टि को आगे बढ़ाते हुए उनके काल्पनिक पुनर्जन्मों को विभिन्न योनियों में 'जातक' कथाओं के रूप में रूपायित किया, जिन्हें लकड़ी की शिलाओं, शैलचित्रों एवं अन्य कलात्मक माध्यमों में अंकित कर आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शन की व्यवस्था की गई। यह तथ्य अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आज भगवान् बुद्ध का स्मरण पर्यावरण के मार्गदर्शक के रूप में भी अत्यन्त आदर एवं सम्मान के साथ किया जाता है। विज्ञान एवं आधुनिक प्रगति ने जहाँ मानव जीवन को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं, वहीं इसके दुष्परिणामों से पृथ्वी का अस्तित्व ही संकट में पड़ता प्रतीत हो रहा है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि अनियंत्रित वैज्ञानिक विकास मानवता को विनाश के कगार तक ले आया है।वर्तमान में विभिन्न सरकारें, धार्मिक एवं समाजसेवी संस्थाएँ तथा वैज्ञानिक पर्यावरण–संरक्षण के प्रति सजग होकर पृथ्वी की सुरक्षा हेतु प्रयासरत हैं। यह एक शुभ संकेत है कि पर्यावरणीय चेतना से प्रेरित होकर अनेक संगठन एवं विद्वान पृथ्वी के संरक्षण के लिए विविध उपायों पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं।

प्राचीन काल में, विशेषतः राजसत्ता के उत्कर्ष के समय, पशु–पक्षियों के जीवन पर गंभीर संकट उपस्थित था। आखेट को शौर्य और प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था तथा यज्ञीय अनुष्ठानों के नाम पर असंख्य पशुओं, पक्षियों, वृक्षों और अन्न की आहुति दी जाती थी। परिणामस्वरूप प्रकृति का संतुलन निरंतर विचलित होता गया, जिसके दुष्परिणाम आज भी पर्यावरणीय संकटों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे समय में लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने अहिंसा और करुणा पर आधारित जीवन दृष्टि का प्रतिपादन कर एक मौन किंतु प्रभावशाली सामाजिक धार्मिक परिवर्तन का सूत्रपात किया। उन्होंने न केवल हिंसात्मक यज्ञ परंपराओं की वैधता पर प्रश्न उठाया, अपितु 'कूटदन्त सुत्त' जैसे ग्रंथों में स्पष्ट किया कि वे उस यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते जिसमें प्राणियों की हत्या सम्मिलित हो। इसके स्थान पर उन्होंने दान, त्याग, लोककल्याण और श्रद्धा पर आधारित अहिंसात्मक यज्ञ की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसमें किसी भी जीव की हिंसा न हो और जो समाज के नैतिक उत्थान का साधन बने।

भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनाएँ भी मानव और प्रकृति के सजीव सामंजस्य को अभिव्यक्त करती हैं। गृहत्याग के पश्चात उनका वनवास केवल आध्यात्मिक साधना का काल नहीं था, अपितु मानव और वन्यजीवन के सहअस्तित्व का प्रतीक भी था। बौद्ध परंपराओं में वर्णित प्रसंगों में पशु–पक्षियों का सहयोग एवं सान्निध्य करुणा–प्रधान विश्वदृष्टि का संकेत देता है। इसके अतिरिक्त बुद्ध का जन्म एक कृषक–प्रधान शाक्य कुल में हुआ था; उनके पिता शुद्धोधन स्वयं कृषि–आधारित समृद्धि के प्रतीक थे। 'शुद्धोधन' नाम भी कृषि–संस्कृति से संबद्ध अर्थवत्ता को धारण करता है। बाल्यकाल में 'हल–चल उत्सव' (हल जोते जाने के समारोह) का उल्लेख तथा उपदेशों में कृषि, बीज, वृक्ष और वन के बहुल उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि बौद्ध चिंतन की जड़ें ग्राम्य एवं प्राकृतिक परिवेश में गहराई से प्रतिष्ठित थीं। इस प्रकार बौद्ध धम्म केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि पर्यावरणीय नैतिकता का भी आधार प्रस्तुत करता है। इसमें समस्त प्राणिमात्र दृश्य और अदृश्य के प्रति मैत्री, करुणा और संरक्षण की भावना निहित है। कृषि, वन, वृक्ष, पशु–पक्षी और मानव के परस्पर अभिन्न संबंध को स्वीकार करते हुए बुद्ध ने प्रकृति सम्मत जीवन शैली का प्रतिपादन किया। अतः स्पष्टतः कहा जा सकता है कि बौद्ध ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय संदेश आज के पारिस्थितिक संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक हैं।

त्रिपिटक में पर्यावरण का वर्णन

भगवान् बुद्ध का उपदेश विधान यद्यपि मुख्यतः दुःख निरोध और निर्वाण की प्राप्ति पर केन्द्रित है, तथापि उसका आधारभूत ढाँचा प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के साथ अंतर्संबद्ध है। त्रिपिटक विशेषतः सुत्तपिटक में प्रकृति, वन्यजीवन, ऋतु–चक्र, कृषि, वन निवास तथा प्राणिमात्र के प्रति करुणा के असंख्य संकेत प्राप्त होते हैं। यह स्पष्ट करता है कि बौद्ध दृष्टि में मानव और प्रकृति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व की एक अविभाज्य संरचना के अंग हैं।

धम्मपद में पर्यावरणीय नैतिकता

धम्मपद (खुद्धकनिकाय) की 423 गाथाओं में प्रकृति–आधारित उपमानों की उल्लेखनीय बहुलता है। वृक्ष, पुष्प, मधु, नदी, वर्षा, पर्वत, पशु–पक्षी आदि के माध्यम से नैतिक जीवन की शिक्षा दी गई है। यद्यपि ग्रंथ प्रत्यक्षतः 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग नहीं करता, तथापि उसके उपदेशों में अंतर्निहित नैतिक अनुशासन पर्यावरणीय संतुलन की आधारभूमि निर्मित करता है।धम्मपद की प्रसिद्ध गाथा श्सब्ब पापस्स अकरण, कुसला–स उपसम्मा सचित्त

परियोदनं एवं बुद्धान सासनं। (समस्त पापों का त्याग, कुशल कर्मों का संपादन तथा चित्त की परिशुद्धि यही बुद्धों का उपदेश है।) यदि आधुनिक सन्दर्भ में व्याख्यायित किया जाए, तो 'पाप' को पर्यावरण विनाशकारी आचरण तथा 'कुशल' को पर्यावरण–संरक्षणकारी नैतिक व्यवहार के रूप में समझा जा सकता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार बाह्य प्रदूषण की जड़ आंतरिक क्लेश (लोभ, द्वेष, मोह) में निहित है। अतः चित्त शुद्धि ही सामाजिक एवं पारिस्थितिक शुद्धि की पूर्वपीठिका है। इस प्रकार धम्मपद पर्यावरणीय नैतिकता का आध्यात्मिक आधार प्रस्तुत करता है।

थेरगाथा में प्रकृति और साधना–

थेरगाथा खुद्धकनिकाय (सुत्तपिटक) का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें 234 स्थविर भिक्षुओं के 1276 उद्‌गार संकलित हैं।[17] यह ग्रंथ प्रारम्भिक बौद्ध साधना–परंपरा का काव्यमय दर्पण है, जिसमें अरण्य, पर्वत, नदी–तट, गुहा तथा विभिन्न ऋतु–परिवर्तनों का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि भिक्षुओं का आध्यात्मिक जीवन प्राकृतिक परिवेश से अभिन्न रूप से संबद्ध था। भिक्षुओं के आंतरिक साधना जीवन का प्रभावशाली निरूपण स्थविर तालपुट की गाथाओं में प्राप्त होता है, जहाँ वे अपने चित्त को संबोधित करते हुए वृक्ष और उसकी जड़ का रूपक प्रस्तुत करते हैं जैसे कोई व्यक्ति फल की आकांक्षा से वृक्ष लगाए और फिर उसकी जड़ को ही नष्ट करने का विचार करे, उसी प्रकार अनित्य संसार में आसक्ति करना अनुचित है।[18] इस उपमान के माध्यम से प्रकृति जीवन दर्शन की वाहक बनती है और वैराग्य की प्रेरणा देती है। थेरगाथा में अनेक भिक्षुओं को पर्वत गुफाओं और वनप्रदेशों में ध्यानमग्न दर्शाया गया है। पांशुकूलधारी भिक्षु जो चिथड़ों से निर्मित चीवर धारण करता है पर्वत कंदराओं में सिंह के समान शोभायमान प्रतीत होता है[19]। ध्यानस्थ भिक्षु की स्थिरता की तुलना दृढ़ पर्वत से की गई है जिस प्रकार अचल और सुप्रतिष्ठित पर्वत वायु से विचलित नहीं होता, उसी प्रकार काम, क्रोध और मोह से मुक्त साधक भी परिस्थितियों से कम्पायमान नहीं होता।[20] इस प्रकार पर्वत यहाँ आध्यात्मिक अचलता और मानसिक स्थैर्य का प्रतीक बन जाता है।प्रकृति के साथ साधना के इस घनिष्ठ संबंध का एक उल्लेखनीय उदाहरण सुभूति स्थविर का प्रसंग है। वर्णन मिलता है कि वे राजगृह के समीप खुले स्थान में निवास कर रहे थे। वर्षा ऋतु के होते हुए भी वर्षा नहीं हो रही थी और अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। राजा बिम्बिसार ने उनके लिए पर्णकुटी का निर्माण कराया। कुटी में प्रवेश के उपरांत वर्षा प्रारम्भ हुई। तब सुभूति ने लोकहित की भावना से वर्षा का आवाहन करते हुए उद्‌गार व्यक्त किए"मेरी कुटी छाई हुई, सुखद तथा वायु से सुरक्षित है; हे देव! सुखपूर्वक वर्षा करो। मेरा चित्त समाधिस्थ है, निर्वाण के लिए प्रयासरत है; हे देव! सुखपूर्वक वर्षा करो।"यह प्रसंग साधक और प्रकृति के आध्यात्मिक सामंजस्य को रेखांकित करता है।

प्रसिद्ध विद्वान डॉ. एम. विन्टरनिट्ज ने थेरगाथा के प्राकृतिक चित्रणों को "भारतीय गीति–काव्य के सच्चे रत्न" की संज्ञा दी है।[21] वास्तव में भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों का जीवन पर्वतों, गुहाओं, वनों, नदी तटों तथा पर्णकुटियों में व्यतीत होता था, जहाँ वे वर्षा, शीत और शरद जैसे ऋतु परिवर्तनों तथा आकाश पृथ्वी के विविध रंग–रूपों का प्रत्यक्ष अनुभव करते थे। इन प्राकृतिक अनुभूतियों की आंतरिक प्रतिक्रिया उनके चित्त पर किस प्रकार होती थी, इसका सजीव चित्रण थेरगाथा में उपलब्ध है।इस प्रकार स्पष्ट है कि थेरगाथा में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि साधना की सक्रिय सहचरी है। प्रारम्भिक बौद्ध परंपरा में पर्यावरणीय संवेदनशीलता आध्यात्मिक अनुशासन और जीवन व्यवहार दोनों का अभिन्न अंग थी।

मिलिन्दपञ्हो–

मिलिन्दपञ्हो बौद्ध साहित्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें यवन नरेश मिलिन्द (मेनान्दर) और आचार्य नागसेन के मध्य दार्शनिक प्रश्नोत्तर संवाद प्रस्तुत है।[22] इस ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में 'उपमा–कथा' अथवा'गुणोपमा प्रसंग' में विविध पशु–पक्षियों एवं वनस्पतियों के गुणों के माध्यम से भिक्खु के आचरण का आदर्श निरूपित किया गया है। यहाँ कुल 104 पशु–पक्षी एवं वनस्पतियों के गुणों का उल्लेख मिलता है, जिनके अनुशीलन द्वारा साधक अर्हत्त्व की ओर अग्रसर हो सकता है।उदाहरणार्थ, गर्दभ (गदहे) के गुण का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह जहाँ कहीं भी स्थान प्राप्त करता है, वहीं विश्राम करता है, परंतु पूर्ण असावधान होकर नहीं सोता, अपितु सजग रहता है। इसी प्रकार साधक भिक्खु को भी किसी भी आसन चटाई, भूमि या काष्ठफलक पर विश्राम करते समय प्रमाद में न पड़कर सतर्क रहना चाहिए। इसी क्रम में गिलहरी के गुण का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि शत्रु के आगमन पर वह अपनी पूँछ को भूमि पर पटक पटककर उसे भयभीत कर भगा देती है। यह उपमा इस बात का द्योतक है कि साधक को क्लेशरूपी शत्रुओं के निकट आने

पर 'स्मृति प्रस्थान' के अभ्यास द्वारा उन्हें दूर करना चाहिए। तदनन्तर वंश (बाँस) के गुण का निरूपण करते हुए कहा गया है कि वह जिस दिशा में वायु बहती है, उसी दिशा में झुक जाता है। इसी प्रकार योगाभ्यास में प्रवृत्त भिक्खु को 'नवाङ्ग बुद्धशासन' के अनुरूप आचरण करना चाहिए, न कि उसके प्रतिकूल। इस प्रकार 'मिलिन्दपञ्हो' में प्रकृति और प्राणी जगत् के उदाहरणों के माध्यम से नैतिक अनुशासन, सतर्कता एवं साधना मूलक जीवन का आदर्श प्रतिपादित किया गया है, जो बौद्ध नैतिकता के व्यावहारिक पक्ष को अत्यंत सजीव रूप में प्रस्तुत करता है।

मिलिन्दपञ्हो नामक बौद्ध ग्रंथ में पशु पक्षियों, वृक्ष वनस्पतियों, धातुओं तथा अन्य प्राकृतिक उपादानों के गुणों का अत्यंत रोचक एवं शिक्षाप्रद निरूपण किया गया है। ग्रंथ के 'लक्खण–पञ्ह' (लक्षण–प्रश्न) नामक अध्याय में इन उपमाओं के माध्यम से भिक्खु के आचरण, साधना और आत्मानुशासन का आदर्श प्रतिपादित किया गया है। विषय विस्तार के कारण सभी उदाहरणों का यहाँ उल्लेख संभव नहीं है, तथापि उपलब्ध विवरण से स्पष्ट होता है कि बौद्ध आचार्यों का दृष्टिकोण केवल आध्यात्मिक या दार्शनिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं था, अपितु प्रकृति और जीव जगत् के सूक्ष्म अवलोकन पर भी आधारित था।इस ग्रंथ में उल्लेखित है कि अर्हत्त्व की प्राप्ति हेतु साधक को विभिन्न उपादानों से गुण ग्रहण करने चाहिए। परंपरागत पाठों के अनुसार इन गुणों का वर्गीकरण अनेक श्रेणियों में किया गया है, जिनमें लगभग एक सौ से अधिक (104 अथवा 105 के आसपास) पशु–पक्षियों, वनस्पतियों, फल–सब्जियों, धातुओं एवं प्राकृतिक तत्वों के उदाहरण समाहित हैं। यह प्रतीकात्मक पद्धति बौद्ध शिक्षण की व्यावहारिक शैली को उद्घाटित करती है, जिसमें प्रकृति को नैतिक प्रशिक्षण का आधार बनाया गया है।

इसी व्यापक दृष्टिकोण का ऐतिहासिक प्रतिफल हमें सम्राट अशोक की धम्मनीति में भी दृष्टिगत होता है। अशोक की राजमुद्राकृसारनाथ का सिंहस्तम्भ चार सिंहों की पीठ से पीठ सटाकर चारों दिशाओं की ओर गर्जना करती मुद्रा में निर्मित है, जो धम्म के सार्वभौमिक प्रसार का प्रतीक है। इसके अधोभाग में उत्कीर्ण हाथी, घोड़ा, वृषभ और मृग भी गहन प्रतीकात्मक अर्थ समेटे हुए हैं। परंपरागत व्याख्या के अनुसार हाथी बुद्ध के गर्भावतरण (मायादेवी के स्वप्न) का द्योतक है; घोड़ा महाभिनिष्क्रमण का; वृषभ उनकी महानता एवं शक्ति का; तथा मृग सारनाथ में प्रदत्त प्रथम उपदेश 'धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त'– का स्मारक है।

इस प्रकार पशु–प्रतीकों के माध्यम से बौद्ध परंपरा ने अपने दार्शनिक एवं ऐतिहासिक आदर्शों को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान की। इसी क्रम में कमल (पुण्डरीक) को भी बौद्ध धर्म में निर्मलता एवं बोधि का प्रतीक माना गया है। 'सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र' (महायान परंपरा का प्रसिद्ध ग्रंथ) में कमल का प्रयोग आध्यात्मिक शुद्धता और संसारिक कीचड़ में रहते हुए भी अलिप्त रहने के आदर्श के रूप में किया गया है। 'मिलिन्दपञ्हो' में नागसेन द्वारा प्रतिपादित गुणों की सूची यह संकेत करती है कि बौद्ध साधना केवल दार्शनिक चिंतन का विषय नहीं, बल्कि व्यवहारगत अनुशासन का कठोर मार्ग है। प्रत्येक वस्तु चाहे वह सूक्ष्म चींटी हो या विशाल महासागर से साधक को उपादेय गुण ग्रहण करने और दोषों का परित्याग करने की प्रेरणा दी गई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस युग के बौद्ध आचार्य अत्यंत सूक्ष्मदर्शी, अवलोकनशील तथा तटस्थ चिंतक थे, जिन्होंने प्रकृति के प्रत्येक आयाम को आध्यात्मिक साधना से जोड़कर एक समन्वित जीवन दर्शन प्रस्तुत किया।

'उदान' में प्रकृति–उपमान और धम्म–विनयः एक विश्लेषण

बौद्ध त्रिपिटक के खुद्दक निकाय में संकलित 'उदान' ग्रंथ में प्रकृति के विविध उपमानों के माध्यम से धम्म–विनय के सिद्धांतों का अत्यंत सूक्ष्म प्रतिपादन मिलता है।[23] लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व रचित इस ग्रंथ में महासमुद्र, सूर्य, खद्योत (जुगनू), कृषि–भूमि तथा खर–पतवार जैसे प्राकृतिक तत्त्वों के आधार पर नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षाएँ दी गई हैं। भगवान् बुद्ध ने भिक्खुओं को संबोधित करते हुए महासमुद्र के आठ गुणों की उपमा धम्म–विनय के आठ अद्भुत धर्मों से दी है।[24] जैसे महासमुद्र क्रमशः गहरा होता है, वैसे ही इस धर्म में शिक्षा और साधना क्रमबद्ध है; समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वैसे ही श्रावक शिक्षापदों का अतिक्रमण नहीं करते; समुद्र मृत शरीर को बाहर कर देता है, वैसे ही संघ दुश्शील व्यक्ति को स्वीकार नहीं करता।[25] जिस प्रकार विविध नदियाँ समुद्र में मिलकर एक नाम धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार विभिन्न वर्णों से प्रव्रजित व्यक्ति 'भिक्खु' नाम से अभिहित होते हैं;[26] समुद्र का एक ही रस लवण रस है, वैसे ही धम्म का एक ही रस विमुक्ति–रस है। समुद्र रत्नों से परिपूर्ण है, उसी प्रकार धम्म चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग जैसे आध्यात्मिक रत्नों से समृद्ध है।

इसी ग्रंथ में खद्योत (जुगनू) और पतंग का उदाहरण देकर बुद्ध ने अज्ञान और आसक्ति की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है कि जैसे पतंगे दीपक में आकर्षित होकर स्वयं नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही अज्ञानी व्यक्ति विषयों में आसक्त होकर बंधनों में पड़ जाते हैं; सम्यक् सम्बुद्ध के उदय के साथ ही मिथ्यादृष्टियों का प्रकाश लुप्त हो जाता है।[27] कृषि–उपमान के माध्यम से भी यह प्रतिपादित किया गया है कि जिस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त खेत में बोया गया बीज महाफल देता है, उसी प्रकार आर्य अष्टांगिक मार्ग से संपन्न श्रमण को दिया गया दान महान् फलदायी होता है। इसी क्रम में खर–पतवार को खेत का दोष बताते हुए राग, द्वेष, मोह और तृष्णा को मनुष्य के आंतरिक दोषों के रूप में निरूपित किया गया है; अतः इन क्लेशों से मुक्त शैक्ष्य और अशैक्ष्य (अर्हत्) ही दक्षिणा के वास्तविक अधिकारी माने गए हैं।इस प्रकार 'उदान' में प्रकृति का प्रयोग केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि दार्शनिक और नैतिक अनुशासन के सशक्त प्रतीक के रूप में हुआ है, जिससे बौद्ध दृष्टि की सूक्ष्म पर्यावरण–संवेदनशीलता और आध्यात्मिक गहनता का परिचय मिलता है।बौद्ध परंपरा में भिक्खुओं का चीवर (काषाय वस्त्र) केवल परिधान न होकर प्रकृति और कृषि संस्कृति से प्रेरित एक अनुशासित संरचनात्मक विन्यास का उदाहरण है। विनय–पिटक के महावग्ग के अनुसार, मगध देश में सुव्यवस्थित क्यारी–बद्ध खेतों को देखकर भगवान् बुद्ध ने उसी अनुरूप चीवर निर्माण का संकेत दिया, जिसके फलस्वरूप आनंद ने परित्यक्त वस्त्र खंडों को जोड़कर आयताकार, क्यारी सदृश विन्यास में चीवर तैयार किया। विनय साहित्य में मंडल, अर्धमंडल, विवर्त, अनुविवर्त, ग्रीवक, जंघिका आदि अंगों का उल्लेख इस संरचना की सुव्यवस्थित योजना को स्पष्ट करता है। यह विन्यास प्रतीकात्मक रूप से कृषि भूमि के नियोजन और प्रक्षेत्र प्रबंधन से साम्य रखता है। अतः चीवर केवल साधु–वेष नहीं, बल्कि अनुशासन, समता, श्रम संस्कृति और पर्यावरणीय चेतना का सांस्कृतिक प्रतीक है।

विनय पिटक में पर्यावरणीय निर्देश

विनयपिटक में भगवान् बुद्ध ने प्रकृति–संरक्षण से संबंधित अनेक अनुशासन निर्धारित किए हैं। वृक्षों की अनावश्यक कटाई को गंभीर अपराध माना गया है; महावग्ग में उल्लेख है कि बड़े वृक्ष के छेदन पर पाराजिक दोष लगता है" महाग्घरुक्खे छिन्नमत्ते पाराजिकं।"[28] इससे स्पष्ट है कि वृक्षों एवं वनस्पतियों की रक्षा बौद्ध संघ के लिए अनिवार्य थी। इसी प्रकार तृण, वृक्ष, बीज आदि को नष्ट करने पर 'पाचित्तिय' अपराध का विधान किया गया है।29 ग्यारहवें पाचित्तिय में भूतग्राम (वनस्पति जीवन) को हानि पहुँचाना दोष माना गया है, तथा छप्पनवें पाचित्तिय में बिना आवश्यकता अग्नि प्रज्वलित करने को भी अपराध बताया गया है"यो पन भिक्खु अगिलानो ३ जोति समादहेय्य ३ पाचित्तिय।"

वर्षावास की व्यवस्था भी एकेंद्रिय जीवों (वनस्पतियों) की रक्षा हेतु की गई, जिससे वर्षा ऋतु में अनावश्यक भ्रमण से हरे तृणों का मर्दन न हो। साथ ही अवशिष्ट भोजन को तृणरहित अथवा प्राणिरहित स्थान पर त्यागने का निर्देश दिया गया है, ताकि सूक्ष्म जीवों को कष्ट न पहुँचे। पादुका संबंधी नियमों में भी ताड़–पत्तों, बांस, तृण आदि को काटकर बनाए जाने वाले उपस्करों का क्रमशः निषेध किया गया, जिससे वनस्पति जीवन की रक्षा सुनिश्चित हो। इन विनय–नियमों से स्पष्ट है कि बुद्ध ने वायु, जल एवं वन–संरक्षण के प्रति सजग दृष्टिकोण अपनाया था। जलस्रोतों को अपवित्र न करने और प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग का निर्देश संघ–जीवन का अभिन्न अंग था। इस प्रकार विनयपिटक में पर्यावरण–संरक्षण की चेतना विधिवत् विनियमित रूप में अभिव्यक्त होती है।

पर्यावरणीय संकट और बौद्ध धम्म की सतत् विकासपरक दृष्टि–

आधुनिक विश्व में मानव की आवश्यकताओं, इच्छाओं और उपभोगवादी प्रवृत्तियों ने कृषि, वन एवं प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डाला है। भारत में व्यापक भू–भाग कृषि के अंतर्गत है तथा उल्लेखनीय क्षेत्र वनाच्छादित है, जिससे स्पष्ट है कि कृषि और वन एक दूसरे के पूरक तत्त्व हैं। किंतु हरित क्रांति के बाद रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने पर्यावरण, मानव–स्वास्थ्य और पशुधन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। रैचेल कार्सन की कृति Silent Spring ने इस संकट की ओर वैश्विक चेतना को उन्मुख किया। वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् रासायनिक उद्योगों के विस्तार ने पर्यावरणीय असंतुलन को तीव्र किया, जबकि लगभग 2600 वर्ष पूर्व ही भगवान् बुद्ध ने अहिंसा, संयम और प्रकृति सम्मत जीवन का संदेश देकर पर्यावरणीय संतुलन की आधारभूमि प्रस्तुत कर दी थी।

बौद्ध धर्म की मूल भावना मैत्री, करुणा और समताकृसमस्त प्राणीमात्र तथा वनस्पति जगत के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित करती है। सम्राट अशोक ने अपने अभिलेखों एवं नीतियों के माध्यम से वृक्षारोपण, पशु संरक्षण

और नैतिक आचरण को प्रोत्साहित कर इस विचारधारा को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। बौद्ध परंपरा में अनुशासन और शांति का विशेष महत्व है; धर्मदेशना के समय विशाल जनसमूह की उपस्थिति में भी मौन और एकाग्रता का वातावरण ध्वनि संयम का उदाहरण प्रस्तुत करता है।शव विसर्जन संबंधी दृष्टिकोण भी परिस्थितिनुकूल और पर्यावरण सापेक्ष था स्थानीय संसाधनों, जल की उपलब्धता और स्वास्थ्य सुरक्षा को ध्यान में रखकर दाह, भूमिसमाधि अथवा जल विसर्जन की विधियाँ अपनाई जाती थीं। जल संरक्षण का महत्व सिद्धार्थ गौतम के जीवन प्रसंगों, विशेषतः रोहिणी नदी विवाद, से भी स्पष्ट होता है। जातक कथाओं के माध्यम से पशु पक्षियों को नैतिक शिक्षाओं का वाहक बनाकर बौद्ध धर्म ने पर्यावरणीय चेतना को लोक साहित्य में प्रतिष्ठित किया, जिसका प्रभाव आगे चलकर पंचतंत्र, हितोपदेश तथा अन्य विश्व साहित्य पर भी देखा जा सकता है।वर्तमान में ओज़ोन परत की क्षति, क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) जैसे रसायनों का दुष्प्रभाव तथा जल–वायु प्रदूषण की समस्याएँ वैश्विक संकट का रूप ले चुकी हैं। ऐसे समय में बौद्ध धर्म का मध्यम मार्ग, संयमित उपभोग, अहिंसा और सह अस्तित्व का सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण की नैतिक आधारशिला प्रदान करता है। कृषि, वन और पर्यावरण इन तीनों की समन्वित दृष्टि के बिना न तो सतत विकास संभव है और न ही मानव–कल्याण; और यही समन्वित दृष्टिकोण बौद्ध धर्म की विशेषता है।

निष्कर्ष–

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म एक ऐसी जीवन–दृष्टि प्रस्तुत करता है, जिसमें मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित सहअस्तित्व का सिद्धांत निहित है। आधुनिक विश्व में औद्योगीकरण, रासायनिक कृषि, उपभोक्तावाद तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु केवल तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं; इसके लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का विकास भी आवश्यक है। बुद्ध की अहिंसा, करुणा, मध्यम मार्ग, प्रतित्यसमुत्पाद तथा जैव–समता की भावना पर्यावरणीय नैतिकता का सुदृढ़ आधार प्रदान करती है। सम्राट अशोक की नीतियाँ तथा जातक कथाओं में निहित जीव–जगत के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण इस विचारधारा के व्यावहारिक रूप को भी उद्घाटित करते हैं।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म न केवल ऐतिहासिक या धार्मिक परंपरा है, बल्कि वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में एक प्रासंगिक, नैतिक एवं व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करने वाली जीवन–पद्धति है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

सन्दर्भ –

1. अम्बेडकर बी० आर० अनु० भदंत आनंद कौसल्यायन, भ० बु० उ० ६० (1991), पृ० 6।
2. अशोक का रूमिन्देई अभिलेख।
3. भदत्त धर्मकीर्ति भ० बु० इ० ध० द०, नागपुर, (1986) पृ० 47।
4. बौद्धाचार्य शान्ति स्वरूप बौद्ध, तथागत बुद्ध जीवन और देशनाएं, सम्यक् प्रकाशन नई दिल्ली, (2015), पृ० 59
5. अंगुत्तरनिकाय, अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन, महाबोधिसभा, कलकत्ता, (1957), 3/1/34
6. दीवान चन्द, दर्शन संग्रह, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, (1958) पृ० 239
7. सांकृत्यायन, राहुल, दर्शन–दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, (1961) पृ० 504
8. कोसम्बी, धर्मानन्द, अनु० श्रीपाद जोशी, भगवान बुद्ध, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (1982) पृ० 129
9. .सांकृत्यायन, राहुल, दर्शन–दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, (1961) पृ० 505
10. वही, पृ० 506

11. विनय पिटक अनु० राहुल सांकृत्यायन महाबोधिसभा, सारनाथ, (1935)
12. दीघनिकाय, अनु० राहुल सांकृत्यायन, महाबोधिसभा, सारनाथ, (1940). 1/15,
13. सांकृत्यायन, राहुल, दर्शन–दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, (1961) पृ० 513
14. दासगुप्ता, एस० एन०, भारतीय दर्शन का इतिहास, राजस्थान हिन्दी आकदमी, खण्ड–1, जयपुर, (1978), पृ०167
15. वही, पृ० 168।
16. वही।
17. थेरगाथा, खुद्दकनिकाय, सुत्तपिटक, पालि टेक्स्ट सोसायटी संस्करण, 234 स्थविरों की 1276 गाथाएँ।
18. थेरगाथा, तालपुट स्थविर गाथा, गाथा सं. 1091दृ1145।
19. थेरगाथा, खुद्दकनिकाय, सुत्तपिटक, पालि टेक्स्ट सोसायटी संस्करण, 234 स्थविरों की 1276 गाथाएँ।
20. थेरगाथा, गाथा सं. 643 (पर्वत–उपमान संबंधी गाथा)।
21. थेरगाथा, सुभूति स्थविर गाथा; परामत्तदीपनी टीका सहित।
22. मिलिन्दपञ्हो, बाहिरकथा (प्रारम्भिक परिचय प्रसंग) दृ मिलिन्द एवं नागसेन संवाद।
23. खुद्दक निकाय, उदान, सुत्तपिटक, त्रिपिटक (पालि), पालि टेक्स्ट सोसायटी संस्करण।
24. वही, उदान, अध्याय 5 (नन्द–वग्ग), समुद्र–उपमा प्रसंग।
25. वही।
26. वही।
27. खुद्दक निकाय, उदान, जुगनू/पतंग उपमा प्रसंग।
28. विनय पिटक, महावग्ग, वृक्ष–छेदन प्रसंग।
29. विनय पिटक, पाचित्तिय, भूतग्राम संबंधी नियम।

Cite this Article

"कु0 ममता', "बौद्ध ग्रंथों में पर्यावरणीय संदेश", Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:3, Issue:5, May 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."